NPA संकट से कैसे बाहर निकलें सरकारी बैंक?

drishtiias.com/hindi/current-affairs-news-analysis-editorials/news-editorials/13-05-2019/print

संदर्भ

भारतीय बैंकों की सबसे बड़ी समस्या गैर निष्पादित परिसंपत्तियों यानी NPA की है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लाखों करोड़ रुपए NPA में फँसे हैं और इसकी वज़ह से उन पर अनावश्यक वित्तीय दबाव बना रहता है। लेकिन हाल ही में इस मोर्चे से एक अच्छी खबर यह आई है कि देश के सबसे बड़े कर्ज़दाता भारतीय स्टेट बैंक (SBI) को वित्तीय वर्ष 2019 में समाप्त चौथी तिमाही में 838 करोड़ रुपए का शुद्ध लाभ हुआ है, जबकि बीते साल समान तिमाही के दौरान बैंक को 7,718.17 करोड़ रुपए का घाटा हुआ था। चौथी तिमाही में बैंक का Gross (सकल) NPA 8.71% से घटकर 7.53% और Net (शुद्ध) NPA 3.95% से घटकर 3.01% रह गया।

इस समस्या को हल करने के लिये हमें यह स्पष्ट समझने की आवश्यकता होगी कि यह समस्या उत्पन्न कैसे हुई। इसके अलावा, यह भी देखना होगा कि इसे सुलझाने के लिये सरल और वैचारिक रूप से संचालित समाधानों के बजाय व्यावहारिक और प्रभावी समाधानों को कैसे अपनाया जाए।

भारतीय बैंक और **NPA**

सबसे पहले यह देखना होगा कि भारतीय बैंकों, विशेषकर सरकारी बैंकों की ऐसी हालत क्योंकर हुई कि NPA सुरसा के मुँह की तरह बढ़ता ही चला जा रहा है।

- मार्च 2018 में वाणिज्यिक बैंकों में कुल NPA 10.3 ट्रिलियन रुपए था, जो बैंकों द्वारा दिये गए कुल ऋणों और अग्रिमों का 11.2% था।
- इस NPA में सरकारी बैंकों का हिस्सा 8.9 ट्रिलियन रुपए था, जो बैंकों के कुल NPA का 86% था।
- सरकारी बैंकों द्वारा दिये गए अग्रिमों तथा ऋणों में Gross NPA 14.6% था यानी दिये गए हर 100 रुपए में से 14.6 रुपए NPA की भेंट चढ़ गए।
- 2007-08 में कुल NPA केवल 566 बिलियन रुपए (आधा ट्रिलियन से कुछ अधिक) था जो कुल अग्रिमों का केवल 2.26% था, लेकिन 2008 के बाद NPA में हुई वृद्धि चौंका देने वाली है।

समस्या इतनी बड़ी कैसे हो गई?

- इसके लिये आंशिक रूप से वर्ष 2004-05 से 2008-09 के **क्रेडिट बूम** को ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है, जब विशेषकर देश के सरकारी बैंकों ने मुक्तहस्त से बिना कोई अधिक ना-नुकुर किये बड़ी मात्रा में लोगों को भारी भरकम कर्ज़ दिये।

- इस अवधि में वाणिज्यिक ऋण (इसे **Non-food Credit** भी कहा जाता है) की मात्रा दोगुनी हो गई। यह वह समय था जब विश्व अर्थव्यवस्था के साथ-साथ भारतीय अर्थव्यवस्था भी तेज़ी से कुलाँचे भर रही थी। आने वाले विकास के अवसरों का लाभ उठाने के लिये भारतीय फर्मों ने बैंकों से भारी मात्रा में कर्ज़ लिया।
- इनमें से अधिकांश निवेश बुनियादी ढाँचे तथा टेलीकॉम, बिजली, सड़क, विमानन, इस्पात जैसे संबंधित क्षेत्रों में हुआ।
- इस दौर में यह सोचकर उद्यमियों और व्यवसायियों में आशा और उत्साह का अतिरिक्त संचार हुआ था कि भारत ने 9% आर्थिक वृद्धि के दौर में प्रवेश कर लिया है। लेकिन जल्दी ही मामला गड़बड़ाने लगा, जैसा कि 2016-17 के आर्थिक सर्वेक्षण में इंगित भी क्या गया था।
- भूमि अधिग्रहण और पर्यावरणीय मंज़ूरी प्राप्त करने में निरंतर समस्याएँ आ रही थीं, जिसकी वज़ह से कई परियोजनाएँ ठप हो गईं और जो परियोजनाएँ काम कर रही थीं उनकी लागत कई गुना बढ़ गई।
- ठीक इसी समय 2007-08 में वैश्विक वित्तीय संकट की शुरुआत हुई और 2011-12 के बाद विकास में मंदी आ गई, जिसकी वज़ह से राजस्व की प्राप्ति अपेक्षा से कम हुई।
- इसके परिणामस्वरूप वित्तीय संकट की प्रतिक्रिया में देश में नीतिगत दरों को सख्त किया गया, जिसकी वज़ह से वित्तपोषण की लागत में वृद्धि हुई।
- इसके अलावा, **रुपए का मूल्यह्रास** होने से उन कंपनियों को बहुत कठिनाई हुई, जिन्होंने विदेशी मुद्रा में ऋण लिया था। उन्हें डॉलर का मूल्य बढ़ जाने की वज़ह से रुपए में अधिक कीमत चुकानी पड़ रही थी।
- विभिन्न प्रतिकूल कारकों के इस संयोजन ने कंपनियों के लिये भारतीय बैंकों से लिये अपने ऋणों को बनाए रखना और चुकाना बेहद कठिन बना दिया।
- वर्ष 2014-15 में बैंकिंग मानदंडों को कड़ा करने के कारण स्थिति और विकट हो गई।
- भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) का यह मानना था कि NPA को कम करके बताया जा रहा है और उसने **एसेट क्वालिटी रिव्यू** के तहत NPA को मान्य बनाने के लिये कठोर मानदंड लागू किये।
- इसका परिणाम यह हुआ कि 2015-16 में NPA पिछले वर्ष की तुलना में लगभग दोगुना हो गया। इसके पीछे ऐसा नहीं था कि अचानक खराब फैसले लिये गए थे। दरअसल, यह पूर्व में लिये गए गलत निर्णयों के संचयीकरण का परिणाम था जो अब अधिक सटीक रूप में सामने आ रहे थे।

अधिक NPA का अर्थ है बैंकों को उसके लिये और अधिक प्रावधान करने होंगे। यहाँ प्रावधान से तात्पर्य उस धनराशि से है जिसे खातों में भविष्य की देयता को कवर करने के लिये अलग रखा जाता है। इस प्रकार के प्रावधानों का उद्देश्य वर्तमान वर्ष के शेष को अधिक सटीक बनाना होता है, क्योंकि कुछ ऐसी लागतें और खर्च हो सकते हैं, जो कुछ हद तक चालू या पिछले वित्तीय वर्ष की हो सकती हैं। इनके लिये अलग से प्रावधान करने से खातों में बहुत अधिक विसंगतियाँ देखने को नहीं मिलतीं।

- इसके बाद एक स्थिति ऐसी आई जब प्रावधान उस स्तर तक बढ़ गए जहाँ बैंकों, विशेष रूप से सरकारी बैंकों ने घाटा उठाना शुरू कर दिया।
- इसके परिणामस्वरूप उनकी पूंजी कम हो गई। सरकार से मिलने वाली पूंजी की रफ्तार धीमी थी और यह **न्यूनतम पूंजी** के लिये तय किये गए **नियामक मानदंडों** को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं थी। यह सर्वविदित है कि पर्याप्त पूंजी के अभाव में बैंक ऋण देने की मात्रा को नहीं बढ़ा सकते।

समस्या का समाधान क्या है?

जैसे ही कोई ऋण या अग्रिम NPA होता है तो उसे तुरंत हल करने के लिये प्रयास होने चाहिये। अन्यथा, बकाए पर लगने वाले ब्याज की वज़ह से NPA तेज़ी से बढ़ता है। चूँकि NPA की समस्या सरकारी बैंकों में अधिक देखने को मिलती है, तो एक बात और जो यहाँ सामने आती है वह यह कि इन बैंकों का सरकारी होना ही NPA की समस्या का मुख्य कारण है। ऐसा मानने वाले

यह तर्क देते है कि बैंकों का सार्वजनिक स्वामित्व अर्थात् उनका सरकारी होना ही भ्रष्टाचार और अक्षमता (जो कर्ज़ जोखिम के खराब मूल्यांकन में दिखाई देता है) के लिये पर्याप्त है। इनके अनुसार इसका एकमात्र समाधान इन बैंकों का निजीकरण करना है, विशेषकर उन बैंकों का जो भारी घाटे में चल रहे हैं।

निजीकरण नहीं है समस्या का समाधान

- निजीकरण की बात कहना आसान है, लेकिन इस पर अमल करना उतना ही मुश्किल है।
- भारतीय बैंकों के भीतर प्रत्येक स्वामित्व श्रेणी में व्यापक विविधताएँ हैं।
- 2018 में SBI का सकल NPA/अग्रिम अनुपात 10.9% था। यह निजी क्षेत्र के दूसरे सबसे बड़े बैंक यानी ICICI बैंक के 9.9% NPA से बहुत अधिक नहीं था।
- स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक जैसे विदेशी बैंक का 11.7% NPA स्टेट बैंक की तुलना में अधिक था।
- इसके अलावा, निजी और विदेशी बैंकों की आपस में भागीदारी थी, जो अब कुछ सबसे बड़े NPA के रूप में सामने आए हैं।

आइये, एक नज़र डालते हैं सरकारी बैंकों की स्थिति पर जिससे पता चलता है कि उनकी हालत इतनी खराब भी नहीं हैं जितना कि बताई जाती है।

उदाहरणार्थ, किसी विकासमान अर्थव्यवस्था के लिये पाँच सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में खनन, लौह और इस्पात, वस्त्र, बुनियादी ढाँचा और विमानन शामिल होते हैं। देश में इन क्षेत्रों को ऋण देने वालों में सरकारी क्षेत्र के बैंक आगे रहे हैं, जिनमें ऋण वापसी का अत्यधिक जोखिम होता है। दिसंबर 2014 में सरकारी क्षेत्र के बैंकों का हिस्सा इन क्षेत्रों में 29% अग्रिमों और 53% जोखिम भरे अग्रिमों का था। इसके विपरीत निजी क्षेत्र के बैंकों के लिये ये आँकड़े 13.9% और 34.1% थे। मोटे तौर पर लगाए गए अनुमान के अनुसार, सरकारी बैंकों ने इन पाँच क्षेत्रों में कुल ऋण का 86% हिस्सा दिया हुआ है। और यह भी एक दिलचस्प संयोग है कि बैंकों के कुल NPA में इन पाँच क्षेत्रों का हिस्सा भी 86% है।

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है वैश्विक वित्तीय संकट और पर्यावरण तथा भूमि अधिग्रहण की समस्याओं के चलते बुनियादी ढाँचा परियोजनाएं प्रभावित हुई थीं। इसके अलावा, कुछ प्रतिकूल अदालती फैसलों से खनन और दूरसंचार क्षेत्र प्रभावित हुए। चीन से होने वाली डंपिंग से स्टील क्षेत्र प्रभावित हुआ था। इस प्रकार, जिन क्षेत्रों में सरकारी बैंकों ने भारी मात्रा में कर्ज़ दिया हुआ था, वे कुछ उन कारकों से प्रभावित थे जिन पर बैंक प्रबंधन का नियंत्रण नहीं था।

अतः कहा जा सकता है कि सरकारी बैंकों का एकमुश्त निजीकरण करके भी NPA की समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता। इसके लिये कुछ विस्तृत उपाय करने होंगे, जिनमें से कुछ का त्वरित क्रियान्वयन करना होगा तथा कुछ मध्यावधि में और कुछ दीर्घावधि में क्रियान्वित किये जाएंगे। इन उपायों का उद्देश्य ऐसे संकटों की पुनरावृत्ति को रोकना होना चाहिये।

क्या किया जा सकता है?

- सबसे पहला और सबसे ज़रूरी कदम बैंकों को अपना NPA कम करने के लिये उठाना होगा।
- बैंकों को ऋणों और अग्रिमों पर होने वाले नुकसान को स्वीकारना होगा (इसे Haircut भी कहते हैं)।
- ऐसा करने के लिये उन पर जाँच एजेंसियों द्वारा उत्पीड़न किये जाने का डर नहीं होना चाहिये।
- इंडियन बैंक्स एसोसिएशन ने प्रमुख ऋणदाता बैंकों के **रिज़ॉल्यूशन प्लान्स** की देखरेख के लिये छह-सदस्यीय पैनल का गठन किया है। रिज़ॉल्यूशन के काम में और तेज़ी लाने के लिये ऐसे और पैनल गठित करने की आवश्यकता पड़ सकती है।
- एक विकल्प ऋण समाधान प्राधिकरण (Loan Resolution Authority) स्थापित करना भी हो सकता है। आवश्यक होने पर संसद के अधिनियम के माध्यम से इसका गठन किया जा सकता है।

- इसके अलावा, सरकार को बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के लिये जो भी अतिरिक्त पूंजी डालनी है, उसे एक बार में डालना चाहिये, क्योंकि देखा यह गया है कि किस्तों में डाली गई ऐसी पूंजी से कोई विशेष लाभ नहीं होता।

जोखिम को लेकर बैंकों के उच्च प्रबंधन की ज़िम्मेदारियाँ

पिछले एक दशक में हुए अनुभवों के मद्देनज़र एक महत्त्वपूर्ण सीख यह मिलती है कि बैंक समग्र जोखिम का प्रबंधन कैसे करता है। अर्थात् किसी भी व्यावसायिक समूह, क्षेत्र, भूगोल, आदि के लिये अत्यधिक जोखिम के प्रति उसका क्या नज़रिया है। इसका निर्णय पूर्णतः बैंक के बोर्ड्स पर छोड़ देना चाहिये।

लगता है कि रिज़र्व बैंक ने इस मामले में सावधानी बरतनी शुरू कर दी है। **टियर-I पूंजी** के मामले में 1 अप्रैल, 2019 से किसी भी व्यावसायिक समूह के लिये कुल पूंजी सीमा 40% से घटाकर 25% कर दी गई है I एकल कर्ज़ लेने वालों के मामले में टियर-I पूंजी की सीमा 20% कर दी गई है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था को रफ्तार देना इस समय सबसे बड़ी चुनौती है..और यह उन समस्याओं का हल खोजे बिना संभव नहीं है, जिनका सामना बैंकिंग प्रणाली को करना पड़ता है। सरकारी स्वामित्व के ढाँचे के भीतर प्रदर्शन में सुधार के लिये बैंकों के पास पर्याप्त संभावनाएँ हैं। सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि सरकार इस मुद्दे पर हीला-हवाली करने के बजाय इस दिशा में ध्यान केंद्रित करे।

अभ्यास प्रश्न: भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के संदर्भ में NPA के संकट पर चर्चा करें। ऐसे कुछ उपाय सुझाएँ जिनसे इस संकट को दूर किया जा सकता है।